REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

स्त्री–विमर्श : अवधारणा एवं स्वरुप

श्री. अनिल शिवाजी झोळ
सहायक प्राध्यापक, अण्णासाहेब मगर महाविद्यालय, हडपसर, पुणे.

• **सारांश :–**

विमर्श से सीधा तात्पर्य सोच–विचार, विनिमय तथा विवेचन से हैं। आज साहित्य जगत में सर्वाधिक चर्चा स्त्री–विमर्श की रही हैं। सदियों से होते आए शो'ाण और दमण के प्रति स्त्री–चेतना ने ही स्त्री– विमर्श को जन्म दिया है। स्त्री–विमर्श और कुछ नहीं आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समता और समानाधिकारी की पहल का दूसरा नाम है।यहवैचारिक आंदोलन स्त्रियों के अधिकारों की मॉग करते हुए स्त्री मुक्ति चाहता है और वह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, वैचारिक एवं लिंग केंद्रित विभेदों को अस्वीकार कर, समान मानवी अधिकारों की भी मॉग करता है। सच तो यह है कि स्त्री को अपने अस्तित्व के बोध ने विमर्श की प्रेरणा दी। स्त्री–शो'ाण का एक बहुत बडा कारण स्त्री देह रही है, इसलिए उनकी मुक्ति को भी उसकी देह से जोड दिया जाता है। स्त्री–विमर्श में स्त्री स्वतंत्रता को आवश्यक माना है। स्त्री–विमर्श के कारण आज स्त्रियों के जीवन में क्रांतिकारी बदलाव आ रहा है।

भूमिका :–

स्त्री–पुरुष दोनों भी समाज के अभिन्न अंग है। दोनों के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाज रुपी रथ के यह दो पहिए हैं। अगर समाज रुपी रथ को आगे बढ़ाना हैं, तो स्त्री–पुरुष इन दोनों पहिएओं की अत्यंत आवश्यकता हैं। दोनों की स्थिति अपने शरीर के दो पैरों जैसी होनी चाहिए किंतु बिडंबना यह है कि ऐसी होती नहीं है। मराठी साहित्यकार पु.ल. देशपांडेजी ने कहा है–

"चलने वाले दो पैर कितने विसंगत,
एक आगे और एक पिछे,
आगे वाले को न अहं है, न पिछे वाले को अभिमान,
क्योंकि उन्हें पता हैं, कुछ क्षणों में ही है बदलाव,
उसी का नाम हैं जीवन ।"

जीवन जिना एक कला है, जो समाज से ही सीखी जा सकती हैं। अतः समाज और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं। उन्हें अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि साहित्य में समाज का रुप प्रतिबिंबित होता हैं। आज साहित्य जगत में सर्वाधिक चर्चा दलित–विमर्श, स्त्री–विमर्श, आदिवासी–विमर्शतथा बाजार–विमर्श इन मुद्दों पर ही रही हैं। अतः इनमें भी दलित–विमर्श और स्त्री–विमर्श पर सर्वाधिक। अतः विमर्श संकल्पना क्या है? उसे जानना जरुरी है।

विमर्श : संकल्पना एवं स्वरुप :–

विमर्श संकल्पना आधुनिक काल की देन है। पिछले लगभग दो दशकों से यह संकल्पना साहित्य जगत में प्रयुक्त हो रही है। वस्तुतः विमर्श को केंद्र में रखते हुए साहित्यिक पहल के श्रीगणेश का श्रेय हंस के संपादक राजेंद्र यादवजी को देना पडेगा, क्योंकि 'हंस' के जरिए ही उन्होंने स्त्री–विमर्श और दलित–विमर्श जैसे विषयों को आज पूरे देशभर के साहित्य जगत में चिंतन–मनन का विषय बनाया हैं। यह तथ्य भी हमें याद रखना होगा कि 'हंस' के कई विशेषांक विशिष्ट

विमर्श केंद्रित रहे हैं।

'विमर्श ' का शाब्दिक अर्थ है – बहस या सार्वजनीक चर्चा। 'विमर्श ' शब्द मूलतः गहन सोच–विचार, विचार–विनिमय तथा चिंतन–मनन को द्योतित करता है। अर्थात विमर्श से सीधा तात्पर्य सोच–विचार, विनिमय तथा विवेचन से हैं। भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'विमर्श' का अर्थ है –"तबादला–ए–ख्याल, परामर्श, मशविरा, राय–बात, विचार–विनिमय, विचार–विमर्श, सोच–विचार।"[1] संपादक आविद रिजवी ने बृहद हिंदी शब्दकोश में 'विमर्श ' का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, विमर्श याने समालोचना, परामर्श, परीक्षा, किसी बात पर अच्छी तरह विचार करना।"[2] मानक हिंदी कोश में 'विमर्श ' का अर्थ इस प्रकार दिया है –"सोच–विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना, किसी बात या विषय पर कुछ सोचना–लिखना, गुण–दोष आदि की आलोचना या मीमांसा करना, जॉचना और परखना। किसी से परामर्श या सलाह करना।"[3] संस्कृत–हिंदी शब्दकोश में विमर्श का आशय इस प्रकार दिया है –"विचार–विनिमय, सोच–विचार, परीक्षण, चर्चा।"[4]

उपर्युक्त कोशगत अर्थ देखने के उपरांत यह स्पष्ट होता है कि 'विमर्श ' में सोच, विचार, चिंतन, परामर्श, विनिमय आदि का होना अपेक्षित है। किसी विषय विशेष के संदर्भ में गंभीरता से चिंतन–मनन, विवेचन, सलाह–मशविरा, विचार–विनिमय और सोच–विचार करना ही विमर्श है। विमर्श किसी भी विषय को लेकर हो सकता है। व्यक्ति, समाज, वर्ग, जाति, विचार, तथा कोई विशिष्ट स्थिति आदि सब विमर्श के विषय हो सकते है। जीवन से संबंधित किसी भी पक्ष, अंग या विषय पर गहन, गंभीर, विमर्श हो सकता है। अतः कहना होगा कि विमर्श का स्वरुप अत्यंत व्यापक है। यह एक ऐसी संकल्पना है कि जिसके अंतर्गत संसार के किसी भी विशय पर तर्क संगत सोच–विचार विनिमय हो सकता है, विवेचन–विश्लेषण किया जा सकता है।

• स्त्री–विमर्श : अवधारणा एवं स्वरुप :–

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में तथा इक्कीसवींसदी के आरंभ में स्त्रियों के प्रश्नों पर विश्वभर के बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों और राजनीतिज्ञों में चर्चा शुरु हुई हैं। इसके पूर्व भी इस विषय पर चर्चा हो रही थी। वैसे देखा जाए तो स्त्रियों की अवस्था को लेकर उन्नीसवींशती से ही चिंतन शुरु हो जाता है। अतः सदियों से होते आए शोषण और दमण के प्रति स्त्री–चेतना ने ही स्त्री–विमर्श को जन्म दिया है। स्त्री–विमर्श वस्तुतः स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की संकल्पना है। स्त्री–विमर्श और कुछ नहीं आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समता और समानाधिकारी की पहल का दूसरा नाम है। डॉ. सुमन राजे के शब्दों में कहे तो, "बीसवीं सदी के मुक्ति–संघर्षों में स्त्री का मुक्ति–संघर्ष शायद सबसे अधिक मूलगामी और सार्वभौमिक रहा है। सबसे अधिक अहिंसक, रक्तहीन और सत्याग्रही भी। ..... वह एक साथ आत्मसंघर्ष, आत्मबोध, आत्मविश्लेषण और आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष भी रहा है।"[5]

स्त्री–विमर्श एक वैचारिक आंदोलन हैं। यह आंदोलन स्त्रियों के अधिकारों की मॉग करते हुए स्त्री मुक्ति चाहता है और वह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, वैचारिक एवं लिंग केंद्रित विभेदों को अस्वीकार कर, समान मानवी अधिकारों की भी मॉग करता है। सच तो यह है कि स्त्री को अपने अस्तित्व के बोध ने विमर्श की प्रेरणा दी। आत्मसमर्पण और पुरुष की एकाधिकारशाही के माहोल से स्त्री को बाहर लाने का श्रेय स्त्री–विमर्श को ही देना होगा। स्त्री–विमर्श स्त्री को वे सारे अधिकार दिलवाने की चेष्टा है जो पुरुषों को सदियों से प्राप्त हैं। लेकिन स्त्री को हमेशा उनसे वंचित रखा गया है। हमसब जानते हैं कि पुरुषप्रधान संस्कृति अब समय के साथ–साथ स्त्री अपनी अस्मिता के प्रति सचेत हुई है। वर्तमान में वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व, स्वतंत्र व्यक्तित्व और स्वतंत्र निर्णय लेना चाहती है। उसकी अपनी आत्म–निर्भरता उसकी अस्मिता की पहचान है। डॉ. अर्जुन चव्हाण के अनुसार, "स्त्री–विमर्श और कुछ नहीं अपनी 'अस्मिता' की पहचान,'स्व' की चिंता, अस्तित्व बोध और अधिकार को जतलाने और बतलाने का विचार चिंतन है।"[6]

स्त्रीआज आत्मनिर्भर है, वह अपने निर्णय खुद ले रही है और अपने विचारों को खुलकर सबके सामने प्रकट कर रही है। वह पुरुषों के कंधे–से–कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में अग्रसर बनकर अपना कार्य कर रही है। उससे आज आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक हर क्षेत्र में अपना झेंडा लहराया है। यह सब संपन्न हुआ क्योंकि स्त्री शिक्षित हुई और वह अन्याय एवं शोषण का डटकर मुकाबला करने लगी है। वह अपने कर्तव्य एवं अधिकारों के प्रति अधिक सजग हुई। इतनाही नहीं उसने पुरुष सत्ता के खिलाफ खडे होकर अपने पारंपारिक बेटी, माता और पत्नी इन भूमिकाओं से छुटकारा पाया है। इसका श्रेय कही–न–कही महात्मा ज्योतिबा फूले को

जाता हैं, क्योंकि स्त्री–शिक्षा के बारें में पहला कदम उन्होंने ही उठाया हैं। उन्होंने अपनी पत्नी सावित्रीबाई को सबसे पहले पढ़ाया और ज्ञान से संपृक्त किया। तब से महिलाओं के लिए शिक्षा के द्वार खुले हुए और वह ज्ञानार्जन करने लगी। कहा जा सकता है कि कही–न–कही स्त्री विमर्श में उन पति–पत्नी ने चिनगारी का काम किया हैं, जो वर्तमान में ज्वालामूखि बन चूकी है। जो किसी भी समय पुरुषप्रधान संस्कृति को उखाड फेक सकती है। स्त्रीवादी स्त्री की मुक्ति चाहते हैं किंतु स्त्री की अकेली मुक्ति काफी नहींहै, सामूहिक संगठित मुक्ति की आवश्यकता है। स्त्री मुक्ति की संभावनाओं के बारे में सिमोन अपनी किताब 'द सेकेंड सेक्स' में कहती हैं, "व्यक्तिगत स्तर पर औरतों को घर की परिधि लॉघकर बाहर उत्पादक श्रम में हिस्सेदारी करनी चाहिए और यदी संभव हो तो विवाह संस्था को भी पूरी शिद्दत से नकार देना चाहिए। .... मैं विवाह संस्था को औरतों के लिए बहुत खतरनाक मानती हूँ।"[7] कहा जा सकता हैं कि स्त्री कामकाजी होने के बाद अधिक स्वतंत्र हुई है।

आधुनिक युग में स्त्री जागरण की लड़ाई में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती तथा विवेकानंद आदि का योगदान रहा हैं। क्योंकि 1829 में राजा राममोहन राय – सती–प्रथा, बहुपत्नी–प्रथा, बाल–विवाह, विधवा–विवाह– निषेध के विरुद्ध लड़ते हुए स्त्री के पक्ष में ही खडे हुए। वे स्त्री–स्वतंत्रता की स्वीकृति समाज से प्राप्त करना चाहते हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती ने स्त्री शिक्षा पर बल देकर उसे बाल–विवाह और वृद्ध–विवाह के विरुद्ध आंदोलन कर 'शारदा ऐक्ट' पास कराया। विवेकानंद की दृष्टि में अमरीकी स्त्रियों का आधुनिक संसार था। वे प्राचीन भारतीय आदर्श और आधुनिक वैज्ञानिक युग के मध्य एक सेतु का निर्माण करना चाहते थे। वे कहते हैं,"मुझे बडी प्रसन्नता होगी, यदि भारतीय स्त्रियों की ऐसी बौद्धिक प्रगति हो जैसी इस देश (अमेरिका) में हुई।"[8]

बीसवींसदी के पूर्वार्द्ध के महिला–लेखन और समकालीन स्त्री–विमर्श में एक मौलिक अंतर है। समकालीन साहित्यिक स्त्री–विमर्श वह है, "जो स्त्री द्वारा लिखा गया, स्त्री के विषय में लिखा गया साहित्य।" वहॉ स्त्री का प्रतिपक्ष 'पुरुश' नहीं है, जडीभूत रुढियॉ हैं जिनके विरुद्ध वह स्वयं खड़ी होती है और अपने साथ–साथ दूसरों को भी जाग्रत करती हैं। स्त्रीवादी विचारक मानते हैं कि स्त्री को अपनी खामोशी को छोड़कर सहजता, गंभीरता और बिना किसी अवरोध के अपनी तकलीफों और व्यधाओं को व्यक्त करना चाहिए। यह एक क्रांतिकारी बदलाव है। सदियों से तरुणाई अपने समय से आगे रही है और इसका आधार उसकी सुविधा और बदलती रुचियॉ रही हैं। हमें ऐसे बदलाव का स्वागत करना चाहिए। पर स्त्री रिवाजों के नाम पर सभी व्यथाओं को झेलही रही हैं। उसे अपनी माहवारी के वक्त आज भी अछूत की तरह देखा जाता है। पितृ–प्रधान समाज ने उसे दोयम दर्जा ही दिया था, पर आज स्त्री स्वयं जाग उठी। उसके साथ–साथ उसकी मुक्ति–कामना भी जागी। उसने अपने अनुभवों पर आधारित ऐसा साहित्य रचा जो उसके प्रति बरते गए भेदभाव को दर्शाने के साथ–साथ उसकी अनुभूतियों को भी दर्शाने लगा। वह स्वानुभवों पर आधारित होकर अपने खुद के दृष्टिकोण से अधिक प्रामाणिक, अधिक विश्वसनीय साहित्य रचने लगी। शिक्षा पाने के कारण अभिव्यक्ति की ताकत उसमे आ गयी हैं। तो जबवह लिखती है, तो अवश्य ही वह अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय होता है। लेकिन यह भी सच हैं कि एक स्त्री के लिए भी स्त्री–जीवन के सभी प्रकार के अनुभव प्राप्त करना संभव नहीं। जैसे निःसंतान स्त्री की पीड़ा अंकित करने के लिए स्वयं बॉझ होना कहॉ तक संभव है? अतः सवाल अनुभव की प्रामाणिकता का नहीं, अनुभव की विश्वसनीयता का उठाया जाना चाहिए।

स्त्री–विमर्श लिंग केंद्रित है। अब : स्त्री–शोषण का एक बहुत बडा कारण स्त्री देह रही है, इसलिए उनकी मुक्ति को भी उसकी देह से जोड दिया जाता है। स्त्री–देह को लेकर स्त्रीवादीयों में कई तरह की प्रतिक्रियाऍहैं। तेलगु साहित्यकार वी. वीर लक्ष्मी देवी का मानना है कि पितृ–सत्तात्मक समाज की पहचान के रुप में चले आ रहे स्त्री के वक्ष को ढकनेवाले 'पल्लू' को जला डालने का काम सबसे पहले किया जाना चाहिए। इस संबंध में वें जयप्रभा की कविता 'पल्लू को फूँक दो' का उल्लेख करती है।

स्त्री–विमर्श वाली लेखिकाओं का यह कहना है, कि जिस प्रकार पुरुष रचनाकार स्त्री–देह का चित्रण करते हैं, उसी प्रकार स्त्री रचनाकारों को पुरुष देहका अंकन करना चाहिए। तसलीमा नसरीन कहती हैं, मैं ऐसी महिला चित्रकार देखना चाहती हूँ, जो पुरुषों की सुडौल बॉहों, उनके नितंबों, जॉघों और यौनांगों की तस्वीर बनाए। आखिर पुरुष अंगों के प्रति स्त्री में भी एक स्वाभाविक आकर्षण है ही। इसलिए स्त्री अपनी देह पर लगाए प्रतिबंधों को तोडकर फेंक देना चाहती है। अतः अबतक जो स्त्री के साथ पुरुष ने किया है, वही वह पुरुषों के साथ करना चाहती हैं। तसलीमा नसरीन निम्न काव्य पंक्तियों में अपने विद्रोह को प्रकट करती हैं–

"मेरी बडी इच्छा होती है लड़का खरीदने की,
जवान–जवान लड़के, छाती पर उगे घने बाल
उन्हें खरीदकर, पूरी तरह रौंद कर
सिकुडे अण्डकोश पर जोस से लात मारकर
कहूँ भाग स्साले।"[9]

इसी प्रकार स्त्रियों द्वारा किए गए लैंगिक अनुभव एवं प्रसवकाल को भी स्त्री लेखन में अभिव्यक्त किया हैं।

स्त्री–विमर्श में स्त्री स्वतंत्रता को आवश्यक माना है। स्वतंत्रता का अर्थ सामाजिक, राजनीतिक तथा परिवारिक स्वतंत्रता ही नहीं, बल्कि दैहिक और मानसिक स्वतंत्रता भी है। स्वतंत्रता चाहिए उस रुढिवादी समाज के बंधनों से जो स्त्री के भीतर की विद्रोह आवाज सुनने से ही इनकार करता है। स्वतंत्रता चाहिए सोच–विचार की। स्वतंत्रता का मूल अभिप्राय है 'निर्णय की स्वतंत्रता' और स्त्री स्वतंत्रता का रुप क्या होगा, यह स्वयं स्त्रियों को ही तय करना है, यह निर्णय कुछ विशिष्ट महिलाओं द्वारा नहीं लिया जा सकता हैं। कहा जा सकता है कि महिला–लेखन में स्त्री–विमर्श स्त्री की दृष्टि से देखा गया और अभिव्यक्त किया गया हैं।

कुल मिलाकर सभी भारतीय भाषाओं में कम–अधिक मात्रा में 'स्त्री–विमर्श' पर साहित्य लिखा जा रहा है। इन समूचे दौर में स्त्री लेखिकाओं का नया वंश विकसित हुआ है। यद्यपि अपेक्षाकृत महिलाओं ने इस क्षेत्र में बाद में पहल की, किंतु जब उसे अपनाया तो वे पूरी तरह छा गयी। अतः उन्हें बेदखल करना असंभव रहा। प्रारंभिक लेखिकाओं में उशा देवी मित्रा, शिवरानी देवी, कौशिल्या अश्क, सुमित्रा कुमारी सिंहा, चंद्रकिरण सोनरिक्सा, महादेवी वर्मा के नाम लिए जा सकते हैं। जिनकी मूल चेतना और चिंताएँ स्त्री को लेकर थीं। इनके पश्चात उशा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, दीप्ति खंडेलवाल, मृदुला गर्ग, माणिका मोहिनी, मंजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, सूर्यबाला, कृष्णा सोबती, निरुपमा सोबती, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा, नमिता सिंह, सुधा अरोड़ा, मैत्रेयी पुष्पा एवं ममता कालिया आदि लेखिकाओं ने भी अपनी रचनाओं में बडी सजगता से स्त्री–विमर्श को उभारने का प्रयास किया हैं।

अंत में इतना ही कहा जा सकता है कि स्त्री–विमर्श के कारण आज स्त्रियों (शहरी) के जीवन में क्रांतिकारी बदलाव आ रहा है, किंतु बडे खेद के साथ यह कहना पड रहा है कि ग्रामीण महिलाएँ आज भी पुरुषी मानसिकता एवं परंपरागत अन्याय, अत्याचार का शिकार हो रही हैं। अतः मेरा कहना इतना ही है कि स्त्री–विमर्श केवल किताबों या मंच तक ही सीमित न रहें बल्कि वह गॉव की हर गली, हर घर तक पहुँचे। तभी स्त्री–विमर्श पर आयोजित संगोष्ठियॉ सही अर्थो में सार्थक सिद्ध होगी।

• संदर्भ सूची :–

1. हिंदी पर्यायवाची कोश, सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी : पृ. – 572
2. बृहत हिंदी शब्दकोश, सं. आबिद रिजवी : पृ. – 922
3. मानक हिंदी कोश, सं. रामचंद्र वर्मा : पृ. – 77
4. संस्कृत – हिंदी कोश, कोशकार : वामन शिवराम आपटे : पृ. 946
5. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, डॉ. सुमन राजे : पृ. 302
6. विमर्श के विविध आयाम, डॉ. अर्जुन चव्हाण : पृ. 29
7. आलोचना, सं. डॉ. नामवर सिंह : पृ. 60
8. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, डॉ. सुमन राजे : पृ. 303
9. वही, पृ. 305

श्री. अनिल शिवाजी झोळ
सहायक प्राध्यापक, अण्णासाहेब मगर महाविद्यालय, हडपसर, पुणे.